जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

भावशून्य क्रिया कभी भी वांछितफल नहीं दे सकती।

- बिन्दु में सिंधु, पृष्ठ-11

वर्ष : 25, अंक : 20 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
जनवरी (द्वितीय) 2003 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25/-, एकप्रति : 2/-

वेदी शिखर शिलान्यास महोत्सव

मुंबई(भायन्दर): यहाँ दिनांक 21 से 22 दिसम्बर 2002 तक भायन्दर समाज द्वारा वेदी शिखर शिलान्यास महोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के दोनों समय समयसार पर मार्मिक प्रवचन हुए तथा आपके प्रवचन के पूर्व दोनों समय ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद के मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन हुये; जिनका लाभ सम्पूर्ण समाज ने लिया।

इसके अतिरिक्त प्रात: जिनेन्द्र पूजन, दोपहर में विधान एवं ब्र. चेतनाबेन द्वारा बालकक्षा ली गयी। विधान का उद्घाटन श्री चंदूलाल कस्तूरचंद शाह ने, झंडारोहण श्रीमती पुष्पाबेन शाह एवं कांतिलाल चंदूलाल शाह ने तथा मंगलकलश स्थापना नाठलाल कोडीदास शाह एवं कांतिलाल दलूचंद शाह ने की। कार्यक्रम में श्री अमृतभाई एवं श्री जयकुमारभाई की उपस्थिति उल्लेखनीय रही ।

सम्पूर्ण कार्यक्रम में लगभग 2000 व्यक्तियों ने लाभ लिया । इस अवसर पर डॉ. भारिल्ल के 313 घंटे के सी.डी. एवं ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे ।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित अभिनयकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित रजनीभाई ने सम्पन्न कराये।

24 तीर्थंकर मंडल विधान सानन्द सम्पन्न

सुसनेर (म.प्र.) : यहाँ स्थानीय दिगम्बर जैन बिचला मंदिर रावलागली में 24 से 31 दिसम्बर सन् 2002 के विदाई में चौबीस तीर्थंकर विधान का आयोजन किया गया, जिसमें जयपुर से पधारे ब्र. यशपालजी जैन के प्रात: एवं सायं दोनों समय छहढाला की पाँचवी ढाल पर मार्मिक प्रवचन हुए। दोपहर में हुई तत्त्वचर्चा का समाज ने भरपूर लाभ लिया।

प्रथमदिन विधि-विधान का निर्देशन पण्डित चेतनकुमारजी शास्त्री पिड़ावा ने किया। अन्य दिनों में समाज ने ही विधि-विधान सम्पन्न कराया। यहाँ अनेक लोगों ने कण्ठपाठ में सोत्साह भाग लिया, जिसमें छहढाला, भक्तामर, कुन्दकुन्द शतक आदि अनेक विषयों को समाज ने कण्ठस्थ कर सुनाया। पारितोषिक वितरण 'रविन्द्र पाटनी चेरिटेबल ट्रस्ट' द्वारा दिया गया। अंत में मंदिर अध्यक्ष श्री केशरीसिंह पाण्डे ने ब्र. यशपालजी के प्रति बहुत-बहुत आभार व्यक्त किया। सम्पूर्ण कार्यक्रम भक्ति-भावपूर्वक सम्पन्न हुआ।

श्यामपुरा (म.प्र.): यहाँ एक मुमुक्षु भाई प्रकाश जैन के विशेष आग्रह पर पधारे ब्र. यशपालजी जैन, जयपुर का एक दिन विशेष प्रवचन हुआ, जिसका समाज ने सोत्साह लाभ लिया। यहाँ भी लोगों ने कण्ठपाठ में भाग लिया और छहढाला, कुन्दकुन्दशतक आदि अनेक विषयों को कण्ठस्थ कर सुनाया। विशेष उपलब्धि के रूप में यहाँ के अनेक लोगों ने प्रतिदिन स्वाध्याय करने का नियम लिया।

सिद्धचक्र विधान एवं आध्यात्मिक शिविर सम्पन्न

ललितपुर (उ.प्र.) : श्री 1008 पार्श्वनाथ दिग. जैन नया मंदिरजी की नवीन धर्मशाला में सकल दिग. जैनसमाज एवं श्री दिग. जैन स्वाध्याय मण्डल ललितपुर द्वारा गुरूवार, दिनांक 2 जनवरी से गुरूवार, दिनांक 9 जनवरी 2003 तक श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान एवं आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित सुबोधकुमारजी सिवनी एवं स्थानीय पण्डित कैलाशचंदजी 'अचल' आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों, प्रौढ़ कक्षाओं एवं बालकक्षाओं का लाभ समाज को मिला।

शिविर में प्रतिदिन जिनेन्द्र पूजन, जिनेन्द्र रथयात्रा, जिनवाणी शोभायात्रा, जयमाला अर्थ, रात्रि में प्रवचन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ विधान एवं शिविर सानन्द सम्पन्न हुआ।

विधान का उद्घाटन श्री हजारीलाल टडैया एवं शिविर का उद्घाटन डॉ. निर्मलचन्दजी जैन एवं डॉ. राजीवजी जैन ने किया । झण्डारोहण माननीय श्री सुंदरलालजी अनौरा एवं श्री अनिलकुमारजी अंचल के करकमलों द्वारा किया गया।

विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य प्रतिष्ठाचार्य बाल ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में पण्डित सुबोधकुमारजी शास्त्री शाहगढ़, पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित अनिलजी 'धवल' भोपाल एवं श्री अमरकुमार जैन ग्वालियर ने सम्पन्न कराये।

सम्पादकीय –

हरिवंशपुराण : एक अनुशीलन

22

– रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

एकबार शौर्यपुर के उद्यान में गन्धमादन पर्वत पर रात्रि के समय सुप्रतिष्ठ नामक मुनिराज प्रतिमायोग लेकर विराजमान थे। पूर्व वैर के कारण सुदर्शन यक्ष ने उन मुनिराज पर अग्निवर्षा, प्रचण्डवायु तथा तेज मेघवृष्टि आदि करके अनेक कठिन उपसर्ग किए; परन्तु उन सब पर साम्यभाव से विजय पानेवाले तथा घातिया कर्मों का क्षय करनेवाले उपसर्गजयी मुनिराज ने ह्न केवलज्ञान प्राप्त कर अर्हन्त अवस्था प्राप्त कर ली।

सुप्रतिष्ठित मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई – यह समाचार जानकर भक्तिभाव से प्रेरित हो उनकी वन्दना के लिए सौधर्म आदि इन्द्रों के समूह तो चारों निकायों के देवों के साथ आये ही, शौर्यपुर का राजा अन्धकवृष्णि भी अपने परिवार और सेना समूह सहित आया। सभी आगंतुक भव्यजीव जब भक्तिभाव सहित वन्दना करके यथास्थान बैठ गये तो भव्यजीवों के भाग्य का निमित्त पाकर भगवान सुप्रतिष्ठित केवली की दिव्यध्वनि के रूप में धर्मोपदेश हुआ। जिसका सार इसप्रकार है ह्न

उनकी दिव्यध्वनि में आया कि ह्न तीनों लोकों में त्रिवर्ग (अर्थ, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति धर्म से ही होती है। इसलिए त्रिवर्ग के इच्छुक प्राणियों को धर्म की साधना/आराधना एवं उपलब्धि करना चाहिए। धर्म ही सर्वोत्कृष्ट मंगलस्वरूप है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित अहिंसा, संयम, तप आदि वस्तुस्वभावरूप वीतराग धर्म के आधार हैं। वह वीतराग धर्म ही जीवों को उत्तम शरणभूत है; क्योंकि वह धर्म ही जीवों को उत्तम सुख की प्राप्ति कराता है। उस धर्म से ही पर्याय में वीतरागता और सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है।

वह धर्म छहद्रव्य, साततत्त्व, वस्तुस्वभाव की समझपूर्वक ही होता है। इन छह द्रव्यों को ही वस्तु कहते हैं। जबतक छह द्रव्य के स्वतंत्र परिणमन का यथार्थ ज्ञान एवं सात तत्त्व या नौ पदार्थों की यथार्थ जानकारी और सही श्रद्धा नहीं होती तब तक वीतराग चारित्ररूप यथार्थ धर्म प्रगट नहीं होता। संयम एवं तप की सार्थकता भी सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होती है।

सम्यग्दर्शन में सच्चेदेव-गुरु-शास्त्र के स्वरूप का यथार्थ निर्णय और साततत्त्वों की सच्ची समझपूर्वक यथार्थश्रद्धा का होना अनिवार्य है।

वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अनेकान्तमय वस्तुस्वरूप की प्रतिपादक स्याद्वादमयी जिनवाणी ही सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु की श्रेणी में आते हैं। इनके सिवाय अन्य कोई भी मुक्तिमार्ग में पूज्य एवं आराध्य नहीं है।

साधना और आराधना की दृष्टि से धर्म-साधना को दो वर्गों में बाँटा गया है ह्न एक मुनिधर्म तथा दूसरा गृहस्थ धर्म। गृहस्थधर्म साक्षात् तो स्वर्गादिक अभ्युदय का कारण है और परम्परा से मुक्ति का कारण है तथा मुनिधर्म मुक्ति का साक्षात् कारण है।

वस्तुतः मुक्ति तो मुनिधर्म की साधना से ही होती है। मुनि हुए बिना तो तीनकाल में कभी भी मोक्ष की प्राप्ति संभव ही नहीं हैं। अरहन्तपद प्राप्त करने की प्रक्रिया ही यह है कि, ''जो गृहस्थपना छोड़ मुनिधर्म अंगीकार कर निज स्वभाव साधना द्वारा चार घातिया कर्मों का अभाव होने पर अनन्त चतुष्यरूप विराजमान हुए वे अरहन्त हैं।'' अरहंत की इस परिभाषा में मुनिधर्म और उसमें भी निज स्वभाव की साधना ही मुख्य है। गृहस्थधर्म तो मात्र एक तात्कालिक समझौता है। जब तक पूर्णरूप से पापों को छोड़ने और निजस्वरूप में स्थिर होने की सामर्थ्य प्रगट नहीं होती तब तक पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ह्न इसतरह बारह व्रतों का एकदेश पालन करते हुए मुनिधर्म को धारण करने की सामर्थ्य (योग्यता) प्रगट, करने का प्रयत्न ही गृहस्थ धर्म है। ज्यों ही कषायों की तीन चौकड़ीजन्य सम्पूर्ण पापभाव और पाप क्रियायें छूट जाती हैं, त्यों ही जीवन में मुनिधर्म आ जाता है। फिर उन्हें मुनिधर्म होने से कोई नहीं रोक सकता। वैसे तो गृहस्थ धर्म का प्रारंभ-सम्यग्दर्शन रूप मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी से ही होता है; किन्तु उसके भी पहले सम्यग्दर्शन ह्न अर्थात् आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिए अष्ट मूलगुणों का पालन, सात व्यसनों का त्याग और सच्चे वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु तथा स्याद्वादमयी वाणी (जिनवाणी) रूप सच्चे शास्त्र का यथार्थ निर्णय एवं उनका श्रद्धापूर्वक दर्शन, श्रवण और पठन-पाठन अति आवश्यक है। इन साधनों के बिना निजस्वभाव में स्थिरतारूप मुनिधर्म की साधना/आराधना तथा रत्नत्रयधर्म का प्राप्त होना कठिन ही नहीं असंभव है।

प्रारंभ में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के माध्यम से छह द्रव्यों के स्वतंत्रपने का, साततत्त्व की हेयोपादेयता का, नौपदार्थ का एवं स्व-पर भेदविज्ञान का ज्ञान तथा परपदार्थों में अनादिकालीन हो रहे एकत्व-ममत्व-कर्त्तृत्व-भोक्तृत्व की मिथ्या-मान्यता का त्याग भी अनिवार्य है।

अतः इनका प्रयोजनभूत ज्ञान भी आवश्यक है। यह सब प्रक्रिया मन्दकषाय में ही संभव है तथा छहद्रव्य, साततत्व आदि की सच्ची समझ और उसके स्वतंत्र परिणमन की सही समझ के लिए इसी जाति के ज्ञान की प्रगटता (क्षयोपशम) का होना भी आवश्यक है। इसे ही शास्त्रीय भाषा में क्षयोपशमलब्धि कहा गया है और कषायों की मंदता को विशुद्धिलब्धि कहा गया है। इन दो लब्धियों के होने पर देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से प्राप्त उपदेश भी देशनालब्धि के रूप में प्राप्त हो ही जाता है।[1]

यह सब तो सम्यग्दर्शन की पूर्व भूमिका में ही होता है – ऐसी पात्रता बिना आत्मानुभूति रूप सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता; अतः मनुष्य जन्म की सफलता के लिए हमें ऐसी पात्रता तो प्राप्त करना ही है। देखो, जो प्राणी मोह के वश हो संसारचक्र में फँसे रहते हैं। कर्मकलंक से कंलकित ऐसे अनंत जीव हैं, जिन्होंने आज तक त्रस पर्याय प्राप्त ही नहीं की। ये प्राणी चौरासी काल कुयोनियों तथा अनेक कुल कोटियों में निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं। कदाचित् हम भी यह अवसर चूक गये तो चौरासी लाख योनियों में न जाने कहाँ फँस जायेंगे। फिर अनन्तकाल तक यह स्वर्ण अवसर नहीं मिलेगा। **(क्रमशः)**

1. इन सबका सरलता से ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, द्रव्य संग्रह, छहढाला लेखक की कृति 'सुखी जीवन' का स्वाध्याय करें।

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

5

ज्ञान की पर्याय में ज्ञाता जानने में आता है, तथापि उसे नहीं जानता। परज्ञेय जो जानने में आते हैं; उन्हें अपना मानता है। यही महा-अपराध है। अनन्तज्ञान, आनन्दादि का जो अपना वैभव है, उसे नहीं जानता और पुण्य-पाप को, रागादि को अपना जानता है यही महा-अपराध है।

द्रव्यदृष्टि में आत्मा ज्ञायक ही है, वह शुभाशुभ भावरूप हुआ ही नहीं है, अचेतनरूप हुआ ही नहीं है। ज्ञायकभाव शुभाशुभरूप परिणमे तो अचेतन हो जाय; इसलिये वह प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं हुआ। असंख्य प्रदेश में ज्ञान का पुंज ज्ञायक है, वह शुभाशुभ भावरूप क्यों परिणमेगा? इसलिये शुभाशुभ भाववाला जीव ह्न ऐसा कहना वह 'घी के घड़े' की भाँति व्यवहार है।

भूत और भविष्य की सभी पर्यायें यद्यपि वस्तु में पर्यायपने अविद्यमान हैं; तथापि ज्ञान में विद्यमान ही हैं - ऐसा ही ज्ञान का स्वभाव है। प्रभु! तेरा स्वभाव सर्वज्ञस्वरूपी है। वह सर्वज्ञस्वरूपी पर्याय प्रगट हो, उसमें तीनों काल की पर्यायें स्थिरबिम्ब विद्यमान हैं। अहाहा! यह बात जिसके ज्ञान में यथार्थ बैठ गई उसके भव का अन्त आ गया। उसे केवलज्ञान होकर ही रहेगा। उसके क्रम में केवलज्ञान आयेगा ही और वह केवलज्ञान वर्तमान में दूसरों के केवलज्ञान में अकम्परूप से अर्पित हो ही गया है।

त्रैकालिक ज्ञायकभाव की दृष्टि करने से परिणति के षट्कारक की क्रिया का लक्ष्य छूट जाता है। पर्याय के षट्कारक की प्रक्रिया से पार हुई जो त्रैकालिक निर्मल अनुभूति सो मैं हूँ ह्न ऐसा लक्ष्य करने से सम्यग्दर्शन होता है। विकार के षट्कारक तो दूर रहे; किन्तु ज्ञान की पर्याय के षट्कारक के परिणमन का लक्ष्य भी छोड़कर उससे भिन्न हूँ ह्न ऐसी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है।

शुद्धात्मा की अनुभूति के सद्भाव में शुद्धोपयोग से मोक्ष होता है तो उसके अभाव में शुभाशुभ उपयोग से बंध होता है; तथापि शुद्ध परमपारिणामिकभाव बंध-मोक्ष को नहीं करता, शुभाशुभभाव को नहीं करता और अनुभूति को भी नहीं करता। परम-भाव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है।

जो इस द्रव्यस्वभाव के गहरे संस्कार डालेगा, उसके कल्याण का कार्य तो होना ही है। जिसप्रकार अप्रतिहतरूप से सम्यग्दर्शन होता है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व होना ही है; उसीप्रकार अंतर की साक्षी में मैं तो ज्ञायक...ज्ञायक....हूँ, रागादि वह मैं नहीं हूँ ह्न ऐसे संस्कार डालेगा तो उसका कार्य (सम्यग्दर्शन) होना ही है।

निर्विकल्प होनेवाला जीव निर्विकल्प होने से पूर्व ऐसा निर्णय करता है कि मैं सदा रागादिभावरूप नहीं; किन्तु ज्ञान-दर्शनरूप परिणमनेवाला हूँ। रागादिभाव अभी होंगे ऐसा जानता है; तथापि मैं उसके स्वामीरूप होनेवाला नहीं हूँ। मुझे भविष्य में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होगा - ऐसा मेरा प्रयत्न है। यद्यपि उस समय राग होगा; परंतु मैं उस रूप परिणमनेवाला नहीं हूँ - ऐसा निर्णय है। निर्णय करता है पर्याय में, फिर अनुभव होगा पर्याय में; किन्तु वह पर्याय ऐसा निर्णय करती है कि मैं तो चिन्मात्र अखण्ड ज्योतिस्वरूप हूँ, पर्यायरूप नहीं हूँ।

जिसे निज-आत्मज्ञान बिना परलक्ष्यी ज्ञान का विशेष क्षयोपशम हो, उसे विकाररूप परिणमना ही भासता है। परसत्तावलम्बी ज्ञान के प्रेम में स्वभाव के प्रति द्वेष है। जो त्रिलोकीनाथ का आदर किये बिना विकाररूप परिणमता है, उसे शुभाशुभभावरूप परिणमना भासता है; किन्तु चैतन्यरूप परिणमना भासित नहीं होता।

बालक से लेकर वृद्ध तक सबको अर्थात् अज्ञानी को सदा स्वयं अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा ही अनुभव में आता है। वर्तमान ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, अज्ञानी के भी जो विकास रूप भावेन्द्रिय की खण्ड-खण्ड ज्ञानरूप पर्याय है, उसमें आत्मा ही अनुभव में आता है; क्योंकि उस पर्याय में स्व-परप्रकाशक शक्ति है; इसलिये उसमें स्वज्ञेय ही ज्ञात होता है। बालक से लेकर वृद्ध तक सबको ज्ञान की पर्याय का स्वभाव स्व-परप्रकाशक होने से, अज्ञानी को भी उसकी ज्ञानपर्याय में आत्मा ही अनुभव में आता है। ज्ञान की प्रगट पर्याय में सबको भगवान आत्मा अनुभव में आता है।

नग्नता-द्रव्यलिंग तो सर्वथा आत्मा के नहीं है; परन्तु जो मोक्षमार्ग है, जो जिनशासन है, वह भावलिंगदशा जो कि पूर्णानन्द की प्राप्ति में साधन है, उसे भी उपचार से आत्मा का स्वरूप कहा जाता है - ऐसा कहकर निमित्त और राग का लक्ष्य छुड़ाया है। अरे ! निर्विकल्प मोक्षमार्ग की पर्याय का भी लक्ष्य छुड़ाया है।

आत्मा ज्ञायक और पर ज्ञेय - ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक संबंध होने पर भी ज्ञेय आत्मा का व्याप्य नहीं है। ज्ञेय संबंधी ज्ञान में ज्ञेय निमित्त होने पर भी ज्ञेय आत्मा का व्याप्य अर्थात् कार्य नहीं है। ज्ञान ही ज्ञाता का कर्म है। इसप्रकार जो विकारी पुद्गल परिणामों का मात्र ज्ञाता ही रहता है, वह ज्ञानी है।

मेरी प्रभुता ऐसी है कि मैं राग के स्वामीरूप से कभी परिणमित नहीं होता। राग का स्वामित्व तो रंकपना है। गणधरदेव भी रागरूप परिणमते हैं; किन्तु राग के स्वामीरूप नहीं परिणमते। मुझमें से जो निकल जाता है और पुद्गल द्रव्य जिसका स्वामी है - ऐसे राग का स्वामी मैं सदा नहीं होने के कारण ममत्वहीन हूँ। राग के स्वामीरूप नहीं होना वह मिथ्यात्व के त्याग की विधि है।

उदयपुर संभाग में -

चल शिक्षण-शिविरों का आयोजन

श्री कुन्दकुन्द वीतराग-विज्ञान शिक्षण समिति उदयपुर के तत्त्वावधान में शीतकालीन अवकाश के समय चल शिक्षण-शिविरों के आयोजन की शृंखला में उदयपुर संभाग के विभिन्न आठ स्थानों पर एक साथ चल शिक्षण-शिविरों का आयोजन किया गया।

जैसा कि विदित ही है कि इन चल शिक्षण-शिविरों में विद्वानों द्वारा आठ दिन तक लगातार एक ही विषय का अध्यापन निश्चित क्रम से कराया जाता है। इस बार इन शिविरों में निश्चय-व्यवहार विषय का अध्यापन कराया गया।

इन शिविरों का केशवनगर उदयपुर में पण्डित जीवनजी शास्त्री घुवारा, हिरणमगरी उदयपुर में पण्डित मनीषजी शास्त्री खड़ैरी, कुरावड़ में पण्डित चिन्मयकुमारजी शास्त्री गुड़ाचंदजी, लूणदा में पण्डित संजीवजी शास्त्री खड़ैरी, भिण्डर में पण्डित अमोलजी शास्त्री हिंगोली (महा.) वल्लभनगर में पण्डित मनोजजी शास्त्री खड़ैरी, दाहोद में पण्डित गजेन्द्रजी शास्त्री बड़ामलहरा, रावतभाटा में पण्डित निलयकुमारजी शास्त्री टीकमगढ़ द्वारा सफल संचालन किया गया।

इन शिविरों में प्रतिदिन प्राय: 8 से 8:45 तक सामूहिक पूजन, 8:45 से 9:30 तक निश्चय-व्यवहार पर प्रवचन, 9:30 से 10:15 तक प्रात: एवं सायं 6 से 7 तक बालकक्षा, सायं 7 से 7:30 तक भक्ति, 7:30 से 8:30 तक निश्चय-व्यवहार की कक्षा, इसप्रकार 7 से 8 घंटे तक तत्त्वप्रभावना की गतिविधियाँ आयोजित की गयीं।

शिविर संचालन में पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसबाड़ा, पण्डित निलयकुमारजी शास्त्री टीकमगढ़, कन्हैयालालजी दलावत श्रीमान राकेशजी वालावात आदि महानुभावों का विशिष्ट सहयोग रहा।

संस्कृत गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर : यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में नववर्ष के शुभ अवसर पर रविवार, दिनांक 5 जनवरी 2003 को एक विशिष्ट संस्कृत गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी का विषय **न्यायदीपिका : एक निरीक्षणं** रखा गया। इस गोष्ठी में सभी वक्ताओं ने संस्कृत भाषा में ही विशिष्टरूप से अपने विषय का प्रतिपादन किया।

गोष्ठी की अध्यक्षता महाविद्यालय के ही भूतपूर्व छात्र डॉ. श्रेयांसकुमारजी सिंघई (प्राध्यापक) ने की। अध्यक्षीय भाषण के रूप में उन्होंने सभी विद्धार्थियों की प्रशंसा करते हुए न्याय की महत्ता को बताकर, संस्कृत तथा न्याय का गम्भीरता से अध्ययन करने के लिए कहा।

श्रेष्ठ वक्ता का पुरस्कार नितेन्द्र जैन अकाझरी एवं दीपक जैन जवेरा को दिया गया। श्रेष्ठ वक्ताओं के अतिरिक्त समस्त वक्ताओं को श्री दुलीचंदजी जैन खैरागढ़वालों की ओर पुरस्कृत किया गया। संचालन चिन्मय जैन पिड़ावा ने तथा संयोजन जिनेन्द्र जैन उदयपुर ने किया।

अंत में महाविद्यालय के अधीक्षक पण्डित शांतिकुमारजी पाटिल ने आभार-प्रदर्शन किया।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानन्द सम्पन्न

1. सेमारी (राज.): यहाँ 25 से 31 दिसम्बर तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें पण्डित लक्ष्मीचंदजी भदावत डूंगरपुर द्वारा प्रवचनसार की 80 वीं गाथा पर प्रवचन, पण्डित धनसिंहजी जैन 'ज्ञायक' पिड़ावा द्वारा समयसार कलश पर प्रवचन, वस्तुव्यवस्था एवं चार-अभाव पर कक्षा तथा पण्डित राजकुमारजी पिड़ावा द्वारा दोनों समय बालकक्षा एवं रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम संपन्न कराये गये। इस कार्यक्रम में करीब 300 व्यक्तियों तथा 150 बच्चों ने भाग लिया। सभी की परीक्षा ली गई तथा अंत में सबको पुरस्कृत किया गया। पश्चात् सम्पूर्ण नगर में जुलूस निकाला गया, जिससे लोगों में विशेष उत्साह का संचार हुआ एवं आगामी वर्ष पुन: बाल-संस्कार शिविर तथा सिद्धचक्र मण्डल विधान कराने की भावना समाज ने व्यक्त की।

सम्पूर्ण कार्यक्रम पण्डित धनसिंहजी 'ज्ञायक' पिड़ावा के निर्देशन में सम्पन्न हुआ। **- महावीरकुमार चंद्रप्रकाश जैन**

2. दाहोद (राज.): यहाँ दिनांक 22 से 31 दिसंबर तक बालबोध शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया, जिसमें पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री परतापुर एवं पण्डित गजेन्द्रकुमारजी शास्त्री बड़ामलहरा के दोनों समय मोक्षमार्ग प्रकाशक पर हुए आध्यात्मिक प्रवचनों तथा कक्षाओं का लाभ सम्पूर्ण समाज ने लिया। कार्यक्रम में दाहोद के 125 बच्चों ने तथा करीब 150 युवाव्यक्तियों एवं बुजुर्गों ने बड़े ही उत्साह से भाग लिया।

शिविर के अन्तर्गत बालकक्षाओं के साथ रात्रि में अनेकानेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया। साथ ही विशेष कार्यक्रम के रूप में 'आचार्य कुन्दकुन्द के आचार्य पदवी समारोह के अवसर पर' कुन्दकुन्द के जीवन पर आधारित एक लघु नाटिका 'बताओ कुन्दकुन्द कैसे थे' का मंचन तथा कविसम्मेलन का आयोजन किया गया।

-राकेश दोशी दाहोद

कैसे मनाये नव वर्ष

जयपुर : आज के इस भौतिक और आर्थिक युग में धार्मिक मूल्यों का उतना महत्व नहीं समझा जा रहा है, जितना कि पहले समझा जाता था। आज धार्मिक विचारों को संकीर्ण विचार मानकर नव युवावर्ग संस्कार हीन होकर दिशा हीन हो रहे हैं।

ऐसे समय में विगत 5 वर्षों से जैन मंदिर जनता कॉलोनी जयपुर में बच्चों में धार्मिक संस्कारों की स्थापना करने के लिये पाठशाला का संचालन किया जा रहा है। इसी क्रम में पाठशाला के 20 बच्चों ने उत्साहपूर्वक भगवान की पूजन करके नव वर्ष का स्वागत किया। उनके इस प्रयास और प्रभावना की सबने अनुमोदना की।

सोनगिर (दतिया) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन परमागम मन्दिर में नव वर्ष के प्रसंग पर दिनांक 1 व 2 जनवरी 03 को पण्डित संजीवकुमारजी गोधा, जयपुर के समयसार कलश-23 पर सारगर्भित प्रवचन हुये। आपने इस आगामी नव वर्ष को तत्त्वोन्मुखी होते हुये विशेष संकल्पों के साथ मनाकर जीवन को सफल बनाने पर जोर दिया।

ज्ञातव्य है कि यहाँ प्रतिदिन दोनों समय स्थानीय विद्वानों का लाभ उपस्थित आत्मार्थियों को मिलता है।

फैडरेशन की टेबल से -

बीते वर्ष फैडरेशन की शाखाओं द्वारा किये गये विशिष्ट कार्यों का ब्योरा इस कालम के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। सभी शाखाओं से एतदर्थ वार्षिक रिपोर्ट आमंत्रित है।

शाखा बदरवास (शिवपुरी)की विस्तृत रिपोर्ट निम्नांकित है -

1. प्रात: एवं सायं प्रतिदिन सामूहिक स्वाध्याय।
2. मुंबई से संचालित ज्ञान-यज्ञयोजना के अन्तर्गत शिक्षण व पठन-पाठन।
3. आषाड़ एवं अष्टाह्निका में फैडरेशन के तत्त्वावधान में समाज द्वारा 'श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान' का सफल आयोजन।
4. दशलक्षण पर्व पर सामूहिक पूजन, स्वाध्याय, जिनेन्द्र-भक्ति एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन।
5. वीतराग-विज्ञान पाठशाला का नियमित संचालन।
6. बदरवास से पण्डित श्री अभयकुमार जैन का बालसंस्कार शिविर एवं दशलक्षण पर्व में ग्वालियर जाकर तत्वप्रचार।
7. महावीर निर्वाण महोत्सव दीपावली के अवसर पर पूजन एवं प्रवचन।
8. अक्टूबर जयपुर शिविर में एवं फैडरेशन के अधिवेशन में श्री परमात्म प्रकाश जैन को जयपुर भेजा गया।

जनवरी 2002 से अक्टूबर 2002 तक की गतिविधियों की जानकारी उपरोक्तानुसार ही है।

सिद्धचक्र महामण्डल विधान सानन्द सम्पन्न

फिरोजाबाद (उ. प्र.): यहाँ श्री छदामीलाल दिग. जैन मंदिर में श्री पाण्डे राजाराम मिठानी देवी परिवार द्वारा गुरूवार, दिनांक 26 दिसम्बर 2002 से गुरूवार, 2 जनवरी 2003 तक श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया गया, जिसमें जयपुर से पधारे पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल के प्रात: द्रव्यदृष्टि पर तथा रात्रि में जिनपूजन रहस्य पर मार्मिक प्रवचन हुए। साथ ही पण्डित अशोककुमारजी सिरसागंज, पण्डित योगेशकुमारजी अलीगंज तथा पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री जयपुर के प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ। श्रीमती कमलाजी भारिल्ल द्वारा छहढ़ाला की एवं पण्डित अनन्तवीरजी शास्त्री द्वारा बालकक्षा ली गयी।

प्रतिदिन प्रात: जिनेन्द्रपूजन, भक्तिभावपूर्वक विधिविधान एवं रात्रि में अनेकानेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया।

सम्पूर्ण विधि-विधान का कार्य पण्डित विरागकुमारजी शास्त्री जबलपुर, पण्डित चेतनकुमारजी शास्त्री नलखेड़ा, पण्डित अभिनयकुमारजी शास्त्री जबलपुर ने सम्पन्न कराया।

सभी कार्यक्रमों में स्थानीय पण्डित नवीनजी शास्त्री, पण्डित सोनूजी शास्त्री, पण्डित विपिनजी शास्त्री, पण्डित सौरभजी शास्त्री एवं अरहंतवीर जैन का सराहनीय सहयोग रहा।

आचार्य शिवार्य और भगवती आराधना

आचार्य शिवार्य की 'भगवती आराधना' यह एक मात्र कृति है, जो कि महापुराण से पूर्व लिखी गई। आचार्य ने भगवती आराधना के अंत में 'आराहणा भगवदी' लिखकर पूज्यता का भाव व्यक्त किया। भगवदी यह विशेषण तीर्थंकर तथा महापुराण के समान है; किन्तु इस ग्रन्थ का नाम आराधना ही है। आराधना के ही आधार से आचार्य देवसेन ने एक ग्रन्थ आराधनासार की रचना की। आचार्य अमितगति ने संस्कृत प्रशस्ति में 'आराधनैषा' नाम लिखा। इस ग्रन्थ की टीका की रचना अपराजित सूरी ने की।

भगवती आराधना में ज्ञान-दर्शन-चारित्र तथा वीर्यरूप चारों आराधनाओं का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ को निम्न बिन्दुओं से समझेंगे:

भक्तप्रत्याख्यान- गाथा 64 में भक्तप्रत्याख्यान के दो भेद किये हैं- सविचार और अविचार। यदि मरण सहसा उपस्थित हो तो अविचार भक्तप्रत्याख्यान होता है, अन्यथा सविचार भक्तप्रत्याख्यान होता है।

औत्सर्गिक लिंग- अचेलता, हाथ से केशों का उखाड़ना, शरीर से निर्ममत्व और पीछी - ये चार औत्सर्गिक भेद हैं।

निर्यापक - जो योग्य और अयोग्य भोजन पान की परीक्षा में कुशल होते हैं, क्षपक का समाधान करने में तत्पर रहते हैं, जिन्होंने प्रायश्चित्त ग्रन्थों को सुना है और दूसरों का उद्धार करने का महत्व जानते हैं - ऐसे 48 यति निर्यापक होते हैं।

शुक्लध्यान का कथन - धर्मध्यान के आलम्बनरूप से बारह अनुप्रेक्षाओं का कथन करने के पश्चात् गाथा 2871 से शुक्लध्यान के चार भेदों का कथन है।

अवसन्न - जो उपकरण, बंसतिका और संस्तर की प्रतिलेखना में स्वाध्याय में, विहार भूमि के शोधन में, गोचरी की शुद्धता में, ईर्यासमिति आदि में, स्वाध्याय के काल का ध्यान रखने में तत्पर नहीं रहता, छह आवश्यकों में आलस्य करता है, उसे अवसन्न कहते हैं।

पार्श्वस्थ - जो उत्पादन और एषणा दोष से दूषित भोजन करता है, नित्य एक ही बंसतिका में रहता है, एक ही संस्तर पर सोता है, एक ही क्षेत्र में रहता है, गृहस्थों के घर के भीतर बैठता है, रात में मनमाना सोता है, वह पार्श्वस्थ है।

कुशील - जिसका कुत्सित शील प्रगट है, वह कुशील है।

संसक्त - जो नटकी की तरह चारित्र प्रेमियों में चारित्र प्रेमी और चारित्र से प्रेम न करने वालों में चारित्र के अप्रेमी बनते हैं, वे संसक्त मुनि हैं।

यथाच्छन्द - जो बात आगम में नहीं कही है, उसे जो अपनी इच्छानुसार कहता है, वह यथाच्छन्द है।

मरणोत्तर विधि - गाथा 2968 से मरणोत्तर विधि का वर्णन है, जो आज के युग को विचित्र लग सकती है।

ब्रह्मचर्य - जीव को ब्रह्म कहते हैं, ब्रह्म जीव का नाम है। अपने और दूसरे के शरीर में प्रवृत्ति का त्याग करके शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन स्वभावरूप आत्मा में जो चर्या है, वह ब्रह्मचर्य है। दसप्रकार के अब्रह्म के त्याग से दस प्रकार का ब्रह्मचर्य होता है ; इसलिए ब्रह्मचर्य के दस भेद कहते हैं।

- अनन्तवीर जैन, फिरोजाबाद

समयसार का सार 61

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि।।201।।
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो।।202।।

जिन जीवों के परमाणु मात्र (लेशमात्र) भी रागादि वर्तते हैं, वे जीव समस्त आगम के पाठी होकर भी आत्मा को नहीं जानते। आत्मा को नहीं जाननेवाले वे लोग अनात्मा को भी नहीं जानते। इसप्रकार जो जीव और अजीव (आत्मा और अनात्मा) दोनों को ही नहीं जानते; वे सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं ?

यदि इन दो गाथाओं का सही अर्थ नहीं समझा जाय तो बहुत अनर्थ हो सकता है; अतः इन्हें सही रूप में समझना अत्यंत आवश्यक है।

करणानुयोग के शास्त्रों में यह कहा गया है कि राग दसवें गुणस्थान तक रहता है; जबकि सम्यग्दर्शन तो चतुर्थगुणस्थान में ही प्रगट हो जाता है; अतः यहाँ उक्त कथनों में परस्पर विरोध प्रतिभासित होता है; परन्तु वस्तुतः विरोध नहीं है; क्योंकि यहाँ 'परमाणु मात्र राग' का अर्थ राग की सत्ता ही नहीं है – ऐसा नहीं है; अपितु 'राग धर्म है, राग मैं हूँ, राग मेरा है, राग की क्रिया का कर्त्ता–भोक्ता मैं हूँ, राग सुखस्वरूप है, राग करने से मुझे सुख की प्राप्ति होगी' – ऐसी मान्यता का नाम 'परमाणुमात्र राग' है।

यह अपने मन से निकाला हुआ अर्थ नहीं है; अपितु इसी गाथा में लिखा है कि 'सव्वागमधरोवि' अर्थात् जो सर्व आगम को जानता है; परंतु फिर भी वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। शास्त्रों में यह आता है कि मिथ्यादृष्टि सर्व आगम को जान ही नहीं सकता है, वह द्वादशांग का पाठी नहीं हो सकता है, श्रुतकेवली भी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में 'सर्व आगम को जाने का अधिक से अधिक ग्यारह अंग और नौ पूर्व को जाने – ऐसा अर्थ है। यही अर्थ आचार्य अमृतचन्द्र ने एवं आचार्य जयसेन ने किया है।

ऐसा जीव आत्मा को नहीं जानता है अर्थात् उसे आत्मा का अनुभव नहीं है। शास्त्रों से पढ़कर, गुरु के मुख से सुनकर, भले ही उसने आत्मा को जाना होगा; लेकिन उसे आत्मा का अनुभव नहीं है। जिसे आत्मा का अनुभव नहीं है, वह अनात्मा को भी नहीं जानता है। अनात्मा को नहीं जानता है अर्थात् 'यह आत्मा नहीं है' – ऐसा ज्ञान उसे नहीं है; क्योंकि जब आत्मा का ही ज्ञान नहीं है तब यह आत्मा नहीं है – यह ज्ञान कैसे हो सकता है।

जिसे नींबू की पहचान नहीं है, उसे संतरा दिखाया जाय तो वह ऐसा नहीं कह सकता है कि यह 'नींबू नहीं है' क्योंकि न उसे सही प्रकार से नींबू की पहचान है और न ही संतरे की।

ऐसे ही जो आत्मा को नहीं जानता है, वह किसी वस्तु को देखकर 'यह आत्मा नहीं है' – ऐसा भी नहीं कह सकता; इसप्रकार जो आत्मा को नहीं जानता है, वह अनात्मा को भी नहीं जानता है।

जो ऐसा कहते हैं कि अनादिकाल से इस आत्मा ने पर को ही जाना है, स्वयं को नहीं जाना है; इसमें कुछ दम नहीं है; क्योंकि इस जीव को न आत्मा का ही सही ज्ञान है और न ही पर का। इसका अर्थ यह नहीं है कि पर जानने में ही नहीं आता है; अपितु उसका सच्चा स्वरूप जानने में नहीं आता – यह है। यहाँ मात्र जानने का नाम जानना नहीं है; अपितु वस्तु का सत्यार्थ स्वरूप जानने का नाम वास्तविक जानना है। जब अज्ञानी जीव स्व–पर को जानता नहीं; ऐसा कथन हो; तब वहाँ वह उन्हें वस्तुस्वरूप के अनुरूप नहीं जानता है – ऐसा समझना।

एक व्यक्ति अशिक्षित था; किन्तु उसने मात्र हस्ताक्षर करना सीख लिया। पहले तो उसे अंगूठा लगाना पड़ता था। अंगूठा लगाने से सभी यह जान जाते थे कि इसे पढ़ना–लिखना नहीं आता है। अब हस्ताक्षर कर देता है और ऐसा मानता है कि सभी ने मुझे 'मैं पढ़ा–लिखा हूँ' – ऐसा जान लिया है। वह पढ़ा– लिखा तो है नहीं; परंतु सभी ने उसे 'यह पढ़ा–लिखा है' – ऐसा जान लिया।

किसी ने उससे पूछा कि 'तुम किस कक्षा तक पढ़े–लिखे हो ?' तब वह उत्तर देता है 'हम मौत पढ़े हैं।' इसका अर्थ यह है कि वह बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर देता है। बिना जाने किसी भी कागज पर हस्ताक्षर कर देना खतरे से खाली नहीं है; इसलिए वह कहता है कि हम अपनी मौत पढ़े हैं।

ऐसे ही अज्ञानी जीव भी अपनी मौत पढ़े हैं, वे शास्त्र भी पढ़े हैं तो अपनी मौत पढ़े हैं; क्योंकि शास्त्र का सच्चा मर्म तो उनके ख्याल में आता नहीं है और हमने बहुत शास्त्र पढ़ लिए, हमने सब जान लिया – ऐसा अभिमान हो गया है।

मैंने एक पण्डितजी से पूछा – 'पण्डितजी आपने मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा है।'

वे कहते हैं – 'हमने सब पढ़ लिया है।'

तब मैंने कहा – 'आपने सब पढ़ लिया है ये तो ठीक है; लेकिन क्या आपने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ भी पढ़ा है ?'

उनका एक ही उत्तर है कि 'हमने सैंकड़ो ग्रंथ पढ़े हैं।'

वह 'मैंने मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा या नहीं पढ़ा है' – साफ–साफ नहीं कहना चाहता है; क्योंकि नहीं पढ़ा कहने पर अपमान हो जाएगा और पढ़ा कहने पर पूछा जा सकता है कि

आठवें अध्याय में क्या कहा गया है ? इनसे बचने के लिए वह कहता है कि 'मैंने बहुत ग्रंथ पढ़े हैं, सैंकड़ो ग्रंथ पढ़े हैं, मेरी जिंदगी पढ़ने–पढ़ने में ही बीती है, मैंने पढ़ने के अतिरिक्त कुछ किया ही नहीं है।'

सीधा सरल जवाब दे तो वह पण्डित कैसा ? आज सबसे बड़ा पण्डित तो वही माना जाता है; जिसका कथन किसी के समझ में ही नहीं आए।

समयसार पढ़ने का अर्थ समयसार की गाथा पढ़ने से नहीं है। जबतक समयसार का मर्म ख्याल में नहीं आता है, तबतक उसे पढ़ना वास्तविक पढ़ना नहीं है।

ऐसे ही परमाणुमात्र भी राग जिसके विद्यमान है, वह आत्मा को नहीं जानता है, भले ही उसने सभी शास्त्रों को पढ़ा हो। इसका अर्थ यह है कि जो राग में उपादेयबुद्धि रखता है, जिसने 11 अंग और 9 पूर्व पढ़े हैं; ऐसा व्यक्ति शास्त्रों में आत्मा को पढ़कर भी उस आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता है। जो आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता है, वह अनात्मा के स्वरूप को भी नहीं जानता है। जो आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता है वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ?

इसी प्रकरण में आचार्य कह रहे हैं कि अपने को सम्यग्दृष्टि मानकर फुलाये हैं गाल जिसने एवं उठाई है गर्दन जिसने – ऐसा अभिमानी मुद्रा वाला कोई मानता है कि सम्यग्दृष्टि को तो बंध नहीं होता है अतः खूब भोग भोगे; जितने अधिक भोग भोगे उतनी ही अधिक निर्जरा होगी।

ऐसा व्यक्ति कहता है कि हम क्या करें ? आप ही कहते हो कि सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के हेतु हैं। और यदि हम ऐसा मानते हैं तो आप इसे गलती कहते हो; आप वही बात कहो तो सत्य है और हम वही बात कहें तो झूठ है – ऐसा क्यों ?

एक करोड़पति सेठ है, वह यदि कहे कि मैंने एक लाख रुपए दान में दिए; लिख लो मेरा एक लाख। दूसरी ओर जिसे कल के खाने की चिंता है, 500 रु॰ प्रतिमाह पर नौकरी करता है; वह कहे कि मेरा सवा लाख लिख लो !

क्या यह सुनकर दान लेनेवाला लिख लेगा ? क्या लिखना चाहिए ? तब वह व्यक्ति कहता है कि जब उन्होंने एक लाख लिखाए हैं, वैसे ही मैं भी सवा लाख लिखा रहा हूँ; यदि उससे पूछा जाय कि आप सवा लाख रुपए कब देंगे ?

तब वह कहता है कि यहाँ देने की बात ही कहाँ है, लिखाने की बात है ? आपने कहा लिखाना हो तो लिखा दें; इसलिए मैंने लिखाया है।

अब यदि उससे पूछते हैं कि आप देंगे कब ?

तब वह उत्तर देता है कि जब होंगे तब !

कब देंगे, इस भव में या अगले भव में ?

वह कहता है जब होंगे तब ! दोनों एक ही बात कह रहे हैं; लेकिन संपूर्ण जगत एक की बात को मानता और दूसरे की बात को नहीं मानता है।

ऐसे ही जो आत्मा का स्वरूप जानते हैं, राग का स्वरूप जानते हैं, राग में जिनकी सुखबुद्धि नहीं है, भोगों में जिनकी सुखबुद्धि नहीं है – ऐसा जीव भोग भोगे तो भी निर्जरा है। एवं जिनके भोगों में सुखबुद्धि है, वे भोग नहीं भोगे तो भी उनके आस्रव है, निर्जरा नहीं है।

हे भाई ! सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा हेतु हैं, इस महान सिद्धान्त से तुमने भोगों की पुष्टि की। यह तो समयसार का दुरुपयोग है।

यह तो ऐसा ही हुआ जैसे दो भाई लड़ रहे थे, उनसे पूछा गया कि भाई आप क्यों लड़ रहे हो ? तब वे कहते हैं कि भरत और बाहुबली भी तो आपस में लड़े थे ! इसमें नया क्या है ? यह तो अनादि की परम्परा है। देखो, इसने आदिपुराण से लड़ाई का पोषण किया।

परंतु उनसे हम पूछते हैं कि इसके बाद क्या हुआ था; यह पढ़ा कि नहीं पढ़ा ? फिर बाहुबली ने दीक्षा ली थी। आप में से ऐसा कौन भाई है जो दीक्षा लेनेवाला है। तब वे कहते हैं कि हमने तो यहीं तक पढ़ा था कि वे लड़े थे, बस !

अरे भाई ! ऐसी अधूरी पढ़ाई से काम चलनेवाला नहीं है।

एक सभागार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक खेला जा रहा था। जब सभी लोग वहाँ से नाटक देखकर बाहर निकले तो पत्रकार जनता से राय लेने के लिए पहुँचे।

जनता को नाटक कैसा लगा ? यह जानने के लिए एक पत्रकार एक व्यक्ति के पास पहुँचा। वह पगड़ीधारी व्यापारी अभी–अभी नाटक देखकर बाहर निकला था।

उससे पत्रकार ने पूछा कि आपको नाटक कैसा लगा ?

तब उसने उत्तर दिया कि 'बहुत अच्छा !'

पत्रकार ने उस व्यक्ति से दूसरा प्रश्न किया – 'आपने इस नाटक से क्या शिक्षा ग्रहण की।'

तब उस व्यक्ति ने तुरंत उत्तर दिया – 'भाया ! सत्य बोलवां में कांई माल नथी।' हरिश्चन्द्र के समान राजा से रंक बनना हो तो सत्य बोले; पत्नी बेचना हो, बेटा बेचना हो, भंगी के यहाँ नौकरी करना हो तो सत्य बोले। यही मैंने इस नाटक से सीखा।

क्या इसी भावना से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक लिखा होगा। उन्होंने तो ऐसी कल्पना भी नहीं की होगी कि कोई व्यक्ति इस नाटक से ऐसी भी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। ऐसे ही भगवान महावीर से लेकर चौथे गुणस्थानवर्ती ज्ञानी धर्मात्मा जीवों ने जब ये कहा होगा कि ज्ञानवंत के भोग निर्जरा हेतु हैं; तब उन्होंने ऐसी कल्पना भी नहीं की होगी कि कुछ लोग ऐसा भी सोच सकते हैं कि यदि भोग निर्जरा के हेतु हैं, तो खूब डटकर भोगे; जितना भोगेंगे उतनी ही निर्जरा होगी।

(क्रमशः)

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

मंगलायतन-अलीगढ़ में -

पंचकल्याणक महोत्सव

अलीगढ़ : यहाँ लघु समयसार छहढाला के रचयिता पण्डित दौलतरामजी की कर्मभूमि सासनी के निकट आध्यात्मिकसत्पुरुष कानजीस्वामी के प्रभावनायोग से तीर्थधाम मंगलायतन की स्थापना हुई है।

तीर्थधाम मंगलायतन में निम्न प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न होने जा रही है -

(1) 40 फीट उन्नत कृत्रिम कैलाशपर्वत पर निर्मित भगवान श्री आदिनाथ जिनमंदिर में संगमरमर के 111 इंच उन्नत पद्मासनस्थ मूलनायक 1008 भगवान श्री आदिनाथ की।

(2) भगवान महावीरस्वामी जिनमंदिर में अष्टधातु की विधि नायक 1008 भगवान महावीरस्वामी एवं भगवान सीमन्धरस्वामी, संगमरमर के 33 इंच उन्नत पद्मासनस्थ 1008 भगवान महावीरस्वामी, 30 इंच उन्नत 1008 भगवान शान्तिनाथ एवं 1008 भगवान पार्श्वनाथ की।

(3) भगवान बाहुबलीस्वामी जिनमंदिर में कमल सिंहासन सहित 09 फीट उन्नत खड्गासनस्थ भगवान बाहुबलीस्वामी, 63 इंच उन्नत खड्गासनस्थ बाहुबलीस्वामी एवं भरतस्वामी की।

(4) 63 फीट उन्नत मानस्तम्भ मन्दिर में 1008 भगवान आदिनाथ के संगमरमर निर्मित पद्मासनस्थ आठ गुलाबी जिनबिम्बों की ।

इसी परिसर में नवनिर्मित पण्डित प्रवर दौलतराम जिनवाणीमंदिर, आचार्य समन्तभद्र आत्मचिन्तन केन्द्र एवं भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का उद्घाटन और अष्टापद पर्वत पर निर्मित शाश्वत निर्वाणक्षेत्र श्री सम्मेदशिखर, श्री गिरनारगिर, श्री चम्पापुर, श्री पावापुर, श्री सोनागिर एवं स्वर्णपुरी सोनगढ़ की भव्य रचनाओं एवं चरणचिन्हों की स्थापना विधि भी सम्पन्न होगी।

समस्त कार्यक्रम माघ कृष्णा चतुर्दशी से माघ शुक्ला पंचमी, वीर निर्वाण सम्वत् 2529, विक्रम सम्वत् 2059 **(शुक्रवार, 31 जनवरी से गुरुवार, 6 फरवरी 03)** तक होनेवाले श्री महावीरस्वामी दि. जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव के अवसर पर सम्पन्न होंगे।

कार्यक्रम में देश के राजनेता, विशिष्ट महानुभाव एवं ख्यातिप्राप्त प्रवक्ताओं की उपस्थिति के अतिरिक्त देश-विदेश से हजारों लोगों की उपस्थिति रहेगी।

अत: आप भी इष्ट मित्रों सहित अधिक से अधिक संख्या में पधारकर धर्मलाभ लेवें।

मार्ग-स्थिति : अलीगढ़ मुख्य जी.टी. रोड पर स्थित उत्तरप्रदेश का प्रमुख औद्योगिक नगर है। दिल्ली, आगरा, मथुरा से रेलमार्ग और बस मार्ग से जुड़ा है। अलीगढ़ ह्न नई दिल्ली से रेलमार्ग से 110 कि.मी. एवं सड़क मार्ग से 135 कि.मी. तथा आगरा व मथुरा के सड़क मार्ग से 80 कि.मी. व 55. कि.मी पर स्थित है।

वैराग्य समाचार

1. जयपुर निवासी श्रीमती मनोरमादेवी पाटनी धर्मपत्नी श्री बी. एल. पाटनी का 58 वर्ष की उम्र में मंगलवार, दिनांक 31 दिसम्बर 2002 को शान्त परिणामोंपूर्वक आकस्मिक देहावसान हो गया है। आप विगत 25-30 वर्षों से टोडरमल स्मारक में प्रतिदिन स्वाध्याय हेतु आया करती थीं।

आपकी स्मृति में आपके परिवार की ओर से जैनपथप्रदर्शक समिति को 501/-रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

2. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर के भूतपूर्व छात्र अनिलकुमारजी शास्त्री खनियांधाना की दादी श्रीमती अलोफाबाई का 95 वर्ष की आयु में सोमवार, 23 दिसंबर को शांतभावपूर्वक निधन हो गया है। आप सरलस्वभावी धार्मिक परिवार की महिला थीं। आपकी स्मृति में परिवार द्वारा 151 रुपये प्राप्त हुये हैं; एतदर्थ धन्यवाद !

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है ।

गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर: यहाँ श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्रांगण में रविवारीय गोष्ठियों की श्रृंखला में दिनांक 29 दिसम्बर को एक विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसका विषय 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार : एक परिशीलन' रखा गया। अध्यक्षीय उदबोधन के रूप में महाविद्यालय के उप-अधीक्षक पण्डित धर्मेन्द्रकुमारजी ने विद्यार्थियों को बहुत सराहा एवं सभी की प्रशंसा की। प्रथम पुरस्कार उपाध्याय वर्ग से संभव जैन, शास्त्री वर्ग से अमित जैन लुकवासा एवं सांत्वना पुरस्कार राजीव जैन गुना को दिया गया। गोष्ठी का संचालन अखिलेश जैन बरा ने एवं संयोजन धर्मेन्द्र जैन बड़ामलहरा ने किया। **- मनोज जैन, अभाना**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) जनवरी (द्वितीय) 2003
J.P.C. 3779/**02/2003-05**

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127